



International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(11): 369-371
www.allresearchjournal.com
Received: 02-08-2015
Accepted: 06-09-2015

डॉ. शिवदत्त शर्मा
पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग राजकीय
महाविद्यालय ढलियारा कांगडा हिप

हिन्दी साहित्य—पुनर्लेखन की समस्या

डॉ. शिवदत्त शर्मा

हिन्दी साहित्य के लेखन का इतिहास बहुत पुराना है। पुराने समय से इतिहास लेखन एक परम्परा सी दिखाई देती है यह सत्य भी है क्योंकि नए नए अनुसन्धान वास्तविकताओं से धूल की परत को हटा कर वास्तविक तथ्यों को सामने ला रहे हैं तथा यह परम्परा निरन्तर जारी रहेगी तथा इसी तरह इतिहास लिखने की परम्परा चलती दिखाई देती रहेगी। विज्ञान के इस युग में देश और काल की सीमाएं काफी छोटी हो गई हैं तथा संसाधन पहले की अपेक्षा अधिक सरलता से प्राप्य हैं तथा दूसरी ओर साहित्येतिहास की सोच लेखन के प्रतिबद्धता जा रही है। हिन्दी साहित्य पर विचार करने का श्रेय सर्वप्रथम गार्सा— द—तासी को जाता है जिन्होंने सन् 1839 ई में इस कार्य को प्रारम्भ किया।¹ इस फ्रेंच विद्वान ने फ्रेंच में इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी नामक ग्रन्थ लिखकर इस परम्परा का प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त भारतीय विद्वानों का भी योगदान सराहनीय रहा।

हिन्दीसाहित्येतिहास लेखन के अनेक प्रयास किए गए हैं। यह भी सत्य है कि साहित्य के प्रत्येक पक्ष का निर्धारण बड़ी ही सूझबूझ से किया गया है फिर भी हिन्दी साहित्य के पुनर्लेखन की समस्या बनी हुई है। डॉ बच्चन सिंह ने ठीक ही कहा है कि—इतिहास लेखन का कम तब तक जारी रहेगा जब तक मानवीय दृष्टि रहेगी।²

वस्तुतः साहित्य का इतिहास साहित्येतर विषयों के इतिहास से भिन्न होता है। उसमें व्यक्ति के, शासकों के, सामन्तों, राज्यों, परिवारों, युद्धों, शान्ति, दुख—सुख, वैभव, विलास, अच्छाई और बुराई के वृत्तचित्र होते हैं। सामान्यतः सम्पूर्ण वाङ्मय ही साहित्य की कोटि में आता है परन्तु इसको दो भागों में बांटा गया है— 1 ज्ञानवाङ्मय 2 भाव वाङ्मय।

वैद्यक, ज्योतिष, गणित, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, सब ज्ञान वाङ्मय के अन्तर्गत आता है। साहित्य की सृष्टि भाववाङ्मय के अन्तर्गत आती है। इसमें हृदय का संवाद होता है जीवन्तता होती है, लोकोत्तरता होती है, जीवन और जगत की दिशा—दृष्टि होती है भविष्योन्मुखता होती है, सर्जनात्मकता होती है। इन तथ्यों को सम्मिलित किए बिना अगर इतिहास लिखा जाएगा तो यह मात्र एक कविवृत्तसंग्रह, युगतथ्य संग्रह और व्याख्याया विवेचन ही रह जाएगा। वह वास्तव में साहित्येतिहास नहीं होता। जो भी लेख इस प्रकार त्रुटिपूर्ण इतिहास लिखने का उपक्रम करते हैं वह व्यर्थ प्रयास ही होता है तथा इतिहास पुनर्लेखन की गम्भीर समस्या पैदा होती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि विद्वानों ने साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत रसात्मक साहित्य को ही साहित्य की कोटि में रखा है। अनेक विद्वान भी इसी मत को स्वीकार करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास में हैं अपभ्रंश की रचनाओं को धर्मतत्व सम्बन्धी रचना कहकर साहित्य की कोटि में ही नहीं रखा है। उन्होंने कहा है— अपभ्रंश की पुस्तकों में कई तो जैनों के धर्मतत्व निरूपण सम्बन्धी हैं जो साहित्य की कोटि नहीं आती हैं। उनका प्रयोग भी केवल इसलिए किया जाता है ताकि यह जाना जासके कि अपभ्रंश भाषा का प्रयोग कब से हो रहा है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों में हरिऔघ, चतुरसेनशास्त्री आदि विद्वानों का भी बड़ा योगदान है। इनका मानना है कि सर्जनात्मक साहित्य, साहित्य की कोटि में आना चाहिए। कुछ विद्वान केवल ललित साहित्य को ही साहित्य की कोटि में गिनते हैं। इस तरह साहित्येतिहास के पुनर्लेखन के प्रसंग में ग्राह्य और त्याज्य विषयों की एक समस्या सामने आती है तथा कोई सर्वमान्य हल निकालने में बड़ी कठिनाई आती है।

अपभ्रंश का प्रयोग बहुत समय तक हिन्दी के समानान्तर चलता रहा है। अवहट्ट और अन्य देशी भाषाओं के साहित्य के साथ साथ अपभ्रंश कह भी रचना होती रही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपभ्रंश की कृतियों का परिचय देते हुए उसकी परम्परा को सम्बत् 1400 तक तो माना ही है यह दूसरी बात है कि उन्होंने उसको हिंदी के साथ मिलाकर साहित्येतिहास गत मूल्यांकन की ओर रुचि नहीं दिखाई। राहुल सांस्कृत्यायन सरहपाद की रचना आठवीं शताब्दी से ही मानते हैं

Correspondence

डॉ. शिवदत्त शर्मा
पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग राजकीय
महाविद्यालय ढलियारा कांगडा हिप

और साहित्येतिहास में उसको समाविष्ट करते हैं।³ गुलेरी जी ने अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहा है। डॉ शम्भुनाथ सिंह ने कहा है कि अपभ्रंश कोई भाषा ही नहीं है। भिन्न-भिन्न मत होने के कारण इस सम्बन्ध में असमंजस की स्थिति है कि क्या अपभ्रंश को इसमें शामिल करें या न करें। साहित्येतिहास लेखक के समक्ष इस तरह की रचना को अपने इतिहास में समाविष्ट करने या न करने की विकट स्थिति है।

हिन्दी साहित्य में आरम्भिक और मध्यकाल तक राजस्थानी, मैथिली, अवधी, और ब्रज भाषा के साहित्य का वर्चस्व देखने को मिलता है।⁴ चन्दबरदाई, विद्यापति, जायसी, तुलसी, सूरदास की भाषाएं कमशः यही हैं। इसमें से कभी किसी भाषा की प्रधानता रही और कभी किसी की। उसमें मूलतः राजनीतिक, सामाजिक, और धार्मिक कारण हो सकते हैं लेकिन अपभ्रंश को छोड़ती और अपना रूप बदलती हुई ये बोलियां या उपभाषाएं भाषा के रूप में प्रतिष्ठित दिखाई देती हैं। उनका साहित्य इतिहास भी आदिकाल एवं मध्यकाल तक बिना किसी रोकटोक से लिखा जाता रहा। आधुनिक काल में आकर खड़ी बोली की प्रतिष्ठा हुई। आधुनिक काल में कविता अथवा गद्य की कोई भी विधा हो सभी में खड़ी बोली ही दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में जिन लोगों के प्रदेशों की जो मातृभाषाएं जैसे अवधी, ब्रज, भोजपुर आदि हैं उनमें भी रचनाएं समान गति से होतीं रहीं तथा उनका प्रचार और विकास अवरुद्ध नहीं हुआ। यहां की अधिकांश जनता अपनी भाषा बोलती है। उसका साहित्य भी होता है परन्तु हिन्दी साहित्य में उसका आधुनिक खड़ी बोली के साथ नाम नहीं लिया जाता। स्पष्ट है इस तथ्य को आंखों से ओझल नहीं करना चाहिए। शिवदान सिंह चौहान ने अपनी रचना हिन्दी- साहित्य के अस्सी वर्ष में इस प्रश्न को उठाया है और कहा है कि सदैव खड़ी बोली ही विकास के शीर्ष पर रहेगी। इस सम्बन्ध में वे अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं- क्या मनुष्य का इतिहास अपने विकास के अंतिम चरण में पहुंचकर परिवर्तन का नियम भी झुठला बैठता है? क्या राजस्थान के लोग आज भी राजस्थानी भाषा नहीं बोलते? क्या ब्रजवासी अपनी मातृभाषा को छोड़ बैठे हैं या बिहार की जनता मैथिली भोजपुरी को भूल गई है? यदि नहीं, तो यह सत्य है कि इस क्षेत्र की विभिन्न भाषाओं के निर्यानवे फीसदी बोलने वाले आज भी अपनी-अपनी मातृभाषाओं को ही बोलते हैं, तो कल उनमें कोई चन्द्र, सूर, तुलसी, या विद्यापति जैसे महान लोग पैदा नहीं हुए जो हमारे इतिहासकारों के इतने यत्न और अध्यवसाय से तैयार किए गए गोरख धन्धे को छिन्न-भिन्न नहीं कर डालते, इसकी संभावना से कैसे इन्कार करें।⁵

इस प्रकार अनेक प्रश्न ऐसे हैं जिनका समाधान किए बिना निर्विवादित साहित्येतिहास लेखन सम्भव नहीं है।⁶ हिन्दी साहित्य के साथ साथ उर्दु साहित्य को रखना भी एक समस्या बना हुआ है। कुछ विद्वानों का मत है कि हिन्दी एक शैली है। जिस भाषा में अरबी फारसी के शब्द मिले हुए हों और हिन्दी क्रिया पदों या शब्दों से जो भाषा युक्त हो उसे उर्दु या उर्दु-ए-मुअल्ला कहा जाता है परन्तु दो भाषाओं की परम्परा में अन्तर होने से बहुत से विद्वान हिन्दी के इतिहास के साथ उसका समावेश करना ठीक नहीं समझते इस सम्बन्ध में डॉ नगेन्द्र जी ने कहा है- उर्दु का हिन्दी साहित्य में अन्तर्भाव करना उचित नहीं- प्रसाद और इकबाल को एक ही भाषा के कवि मानना तर्क संगत नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि दोनों में कुछ तत्व समान हैं परन्तु असमान तत्व कहीं अधिक हैं। अतः हिन्दी साहित्य के इतिहास में उर्दु के समावेश का प्रयास करना व्यर्थ है।⁷

इस तरह हिन्दी के साथ उर्दु के साहित्य को रखने या न रखने की समस्या साहित्येतिहास लेखन के संदर्भ में बनी हुई है। जहां तक दक्खिनी हिन्दी का प्रश्न है उसमें और उर्दु में भेद है। लिपि भेद के बावजूद दक्खिनी हिन्दी, हिन्दी है।⁸ फारसी लिपि में सूफी प्रेमाख्यानक काव्य, मुल्ला दाउद आदि की रचनाएं भी हिन्दी की हैं। दक्खिनी हिन्दी तो हिन्दी से दक्षिण में गए सूफी

संतों, पीरों, फकीरों की भाषा है जिसके मूल में दिल्ली की भाषा के शब्द मिले हुए हैं। शिवदान सिंह चौहान न केवल दक्खिनी हिन्दी को बल्कि उर्दु को भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में सम्मिलित न करने पर क्षोभ व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं -खड़ी बोली की रखता या फारसी निष्ठ उर्दु शैली को हिन्दी के इतिहासकार हिन्दी साहित्य के इतिहास से बहिष्कृत करते आए हैं। न वे उसे विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियों में दो विभिन्न संस्कृतियों के संगम से विकसित हिन्दी का अनिवार्य रूप ही मानते हैं न भारतीय ही। वे वली, मीर तकी, मीरदर्द, नजीर, अकबराबादी, जौक, गालिब, मोमिन, अमीर, दाग, आजाद, हाली, अकबरइलाहाबादी आदि रचनाकारों को भारतेन्दु से पूर्व का गद्यकार मानकर उनकी विशिष्टता के आधार पर उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास के उपयुक्त मानते हैं।⁹

हिन्दी साहित्य के पुनर्लेखन में ग्रहण और त्याग के विवाद में समस्या उत्पन्न हो गई है। यहां यह तथ्य भी देखने योग्य है कि अनेक विद्वान हिन्दी पर पंजाबी प्रभाव का आख्यान करके और गुरु मुखी लिपि के कवियों और लेखकों का हवाला देकर पंजाबी के साहित्य को भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में रखना चाहते हैं। इस तरह साहित्येतिहास लेखन में एक और संकट है।

हिन्दी साहित्य के पुनर्लेखन में काल विभाजन की समस्या पहले से ही उभरती रही है। उसके आरम्भ का काल आठवीं शताब्दी से या ग्याहरवीं शताब्दी से मानें अथवा कब से मानें इस सम्बन्ध में अनेक तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं।¹⁰ कुछ बातें जो प्रवृत्तिगत इतिहास ग्रन्थों में भी वर्तमान हैं, उन पर आधुनिक साहित्य के लेखक सहमत नहीं हैं। उदाहरणस्वरूप भक्तिकाल और रीतिकाल में विभाजन युक्तिसंगत नहीं है। भक्ति काल में भक्ति के साथ श्रृंगार खूब चलता रहा और रीति काल में भक्ति की प्रवृत्ति को झुठलाया नहीं जा सकता। फिर प्रवृत्ति गत इतिहासों में भी आधुनिक काल का नाम ठीक नहीं बैठता। आधुनिक कोई प्रवृत्ति नहीं है।¹¹

कुछ विद्वानों ने यह सुझाव दिया है कि कालों का विभाजन हिन्दु ह्रासकाल, मुस्लिम राज्य काल, पुनरुत्थान काल आदि इस रूप में होना चाहिए। परन्तु यह भी काल विभाजन का मान्य आधार नहीं हो सकता। साहित्य राज्य और काल का मुखापेक्षी नहीं होता। एक जाति के ह्रास में हर तरह के कवियों के भाव फूटते नजर आते हैं। यह तथ्य है कि अंग्रेजों के समय में देशभक्ति और राजभक्ति दोनों साथ साथ चल रहीं थीं। रचनाकारों ने दोनों ही तरह के भाव व्यक्त किए हैं। इस प्रकार काल विभाजन की समस्या भी सामने आती है।

हिन्दी-साहित्य का इतिहास-दर्शन नामक ग्रन्थ में डॉ आनन्द नारायण शर्मा ने इस ओर ध्यान आकर्षित किया है कि साहित्येतिहास लेखन में प्रमुख कृतिकारों की ही चर्चा है गौण कृतिकार उपेक्षित रह जाते हैं।

आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने इस पक्ष की ओर ध्यान दिलाया था उन्होंने कहा था- साहित्यिक इतिहास लेखन में महान लेखकों को ही महत्व दिया गया है जबकि गौण साहित्यकारों की उपेक्षा हुई है। साहित्य के क्षेत्र में कई बार कम प्रसिद्ध कवियों ने भी अपने युग और परिवेशगत मूल्यों को बड़े महत्वपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। ये न केवल साहित्य में वृद्धि करते हैं अपितु परम्परा आदि को भी अपने ढंग से आगे बढ़ाने में इनकी भूमिका सराहनीय रही है।

उपरोक्त संदर्भ में अज्ञेय ने बड़े साफ शब्दों में कहा है-कला की साहित्य-रचना की मुख्य प्रवृत्ति का युग के सबसे उल्लेखनीय कवियों की रचनाओं में प्रतिबिम्बित होना अनिवार्य नहीं है। बहुत सम्भव है कि एक युग की मुख्य चिन्ताधारा ऐसे कवियों में लक्षित हो जो अपने युग में कभी प्रसिद्धि नहीं पा सके।

हिन्दी साहित्य के पुनर्लेखन में वर्णित विचारों में गौण कृतिकारों के समावेश-असमावेश की समस्या सामने आती है। इतना अवश्य है कि गौण रचनाकार अपना ऐतिहासिक महत्व जो रखते हैं कई बार

साहित्य की भूली –विसरी और छूटी कड़ियों को जोड़ने का काम भी करते हैं। इससे पता चलता है कि हिन्दी साहित्य में पुनर्लेखन में अनेकों समस्याएं पाई जाती हैं और सारी की सारी समस्या का समाधान हो जाए यह जरूरी नहीं है। परन्तु इन समस्याओं की उपस्थिति में नए इतिहास के लेखकों में जागरूकता अवश्य आएगी। साहित्य का हमेशा से ही विकास होता रहा है। वह बढ़ता है, बदलता है, परिवेश विशेष में चमकता है यही उसकी विशेषता है। साहित्य के इतिहास में लेखक उसी आलोक में जागरूक रहे तो ही महान साहित्य सामने आया जिसको हम नजर-अन्दाज नहीं कर सकते हैं।

सन्दर्भसूचि

1. डॉ नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ 70
2. डॉ बच्चन सिंह आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ 36
3. डॉ हरीश चन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ 67
4. आचार्य चतुरसेन शास्त्री इतिहास ग्रन्थ पृ 42
5. शिवदान सिंह चौहान हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष पृ 36
6. डॉ हरीश चन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ 56
7. डॉ बच्चन सिंह आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ 89
8. डॉ भोलानाथ तिवारी हिन्दी साहित्य पृ 56
9. शिवदान सिंह चौहान हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष पृ 78
10. डॉ राम खिलावन पाण्डे हिन्दी साहित्य का नया इतिहास पृ 45
11. डॉ गणपति चन्द्र गुप्त हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास पृ 9६